 ISSN: 2349-1876 (Print) | ISSN : 2454-1826 (Online)

फुले दंपति का सहजीवन : साहित्यिक संवाद

काव्यफुले (1854) और तृतीय रत्न (1855)के विशेष संदर्भ मे

संदीप सपकाले,

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

आधुनिक मराठी साहित्य की काव्य परंपरा में स्त्री कवियत्रियों की पंक्ति में सावित्रीबाई फुले का अग्रणी स्थान है। महात्मा जोतीराव फुले की हिंदी जीवनी के लेखक मुरलीधरजगताप सावित्रीबाई फुले के विषय में लिखते हैं कि ''सावित्रीबाई का जन्म सन् 1831 में हुआ था और जोतीराव के साथ उनका विवाह बाल्यावस्था में ही हुआ था। सावित्रीबाई के कार्य का आरंभ तभी हुआ जब जोतीराव ने सन् 1848 में पहली कन्याशाला खोली और छात्राओं की संख्या बढ़ने पर अध्यापिका का कार्यभार सावित्रीबाई को सौंपा। सावित्रीबाई को जोतीराव ने घर पर ही पढ़ाया।''[1] मराठी साहित्य के अध्ययन और अध्यापन जगत में सावित्रीबाई फुले की रचनाओं को लंबे अंतराल की खोज में नब्बे के दशक में साहित्य अध्ययन की दृष्टि से देखा जाने लगा था।

जिस प्रकार से सावित्रीबाई फुले की कविताओं 'काव्यफुले' (1854) को बाद के समय में खोजपूर्ण कार्य के बाद मराठी साहित्य जगत में स्वीकार किया गया था। उसी तरह मराठी नाट्य परंपरा में 'तृतीय रत्न' (1855) नाटक की उपलब्धता के बावजूद लंबे अंतराल के बाद उसके रचयिता महात्मा जोतिबा फुले को मराठी नाट्य आलोचना की दृष्टि से साहित्य के अध्ययन–अध्यापन और अनुसंधान में शामिल किया गया। मराठी नाट्य समीक्षक दत्ता भगत ने जोतिबा फुले के नाटकों का सामाजिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उनके लेखन के व्यंग्य प्रधान किन्तु तीक्ष्ण सामाजिक आलोचकीय तत्वों का निदर्शन कराया हैं। महात्मा फुले के नाटकों की नाट्य समीक्षा की दृष्टी से मराठी में रुस्तम अचलखांब और डॉ. सतीश पावडे का नाम प्रमुखता से आता है। मराठी साहित्य में महात्मा फुले के तृतीय रत्न नाटक पर नाट्य अध्ययन के सर्वांगीण पक्षों की चर्चा करते हुए तृतीय रत्न नाटक को मराठी का पहला नाटक और महात्मा फुले को आद्य मराठी नाटककार के रूप में डॉ. सतीश पावडे की पुस्तक द्वारा देखा गया।

जोतिबा फुले द्वारा तृतीय रत्न नाटक के लिखे जाने की पूर्व परंपरा में प्रयोग स्वरूप नाटकों के मंचन हुआ करते थें। नाटकों की लिखित रूप में 'संहिता' नहीं होती। इस प्रकार की प्रयोग प्रधान नाट्य परंपरा को जोतिबा फुले ने प्रथमतः नाटक की लिखित 'संहिता' द्वारा खंडित किया था। तृतीय रत्न के नाट्य गुणों की चर्चा करते हुए डॉ. सतीश पावड़े लिखते हैं कि ''तृतीय रत्न में नाट्य विधान की रचना में कथानक का विकास, पात्रों का विकास, संवादों की विविधता, भाषिक वैविध्य और अंत में प्रबोधन के रूप में उसका निरूपण आदि तृतीय रत्न नाटक की लिखित कृति को महत्वपूर्ण बनाते है।''[2] सन् 1854 में सावित्रीबाई फुले का काव्यसंग्रह 'काव्यफुले' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। काव्य संग्रह 'काव्यफुले' (1854) के प्रकाशन के 28 वर्ष बाद सन् 1882 में उनका दूसरा संग्रह 'बावन्नकशी सुबोध रत्नाकर' का प्रकाशन हुआ। तत्कालीन मराठी प्रबोधनकाल में सावित्रीबाई फुले और महात्मा जोतिबा फुले के दांपत्य जीवन का पूरा समय सामाजिक परिवर्तन के मार्ग को प्रशस्त करने में व्यतीत हुआ हैं। 19वीं सदी के महाराष्ट्र

में सामाजिक परिवर्तन के प्रवाह में फुले दांपत्य का 'एक्शन ओरिएंटेड़ सोशल चेंज' का कार्यक्रम उनके अपने पारिवारिक संबन्धों की क्रांतिकारी कसौटियों से बुना हुआ था जिसमें 'स्त्री–पुरुष समता' का विचार मात्रकागजों पर लिखा हुआ कोई दस्तावेज भर नहीं था।

आज महात्मा जोतिबा फुले के साथ–साथ सावित्रीबाई फुले के विषय में और उनके कार्यों के विषय में लगभग प्रमुख घटनाओं और परिघटनाओं को हम जानते हैं। 'स्त्रीशूद्रातिशूद्र' यानी स्त्री, शूद्र और अतिशूद्रों के सम्मिश्रण से निर्मित इस परिवर्तनकारी शब्द में स्त्री का स्थान भाषायी संरचना में फुले दंपति ने पहले स्थान पर रखा हुआ है। फुले दंपति द्वारा सन् 1848 से सन् 1852 के मात्र चार वर्षों के दौरान 'स्त्रीशूद्रातिशूद्रों' की शिक्षा के लिए किए गए कार्यों के विषय में लिखा गया हैं कि 'अपने चार वर्षों के अथक प्रयत्नों से फुले दंपति ने पुणे और पुणे के ग्रामीण क्षेत्रों में कुल अठारह पाठशालाएँ शुरू की इन पाठशालाओं का सफल संचालन किया। इन पाठशालाओं को चलाने के लिए उन्होने अविश्रांत परिश्रम किया। अपनी भूख–प्यास भूलकर इस परोपकारी कार्य से पीछे नहीं हटें। इस ज्ञानदान के यज्ञ को दिनरात प्रज्वलित रखा। फुले दंपति द्वारा किया गया यह कार्य एक चमत्कार जैसा था क्योंकि उस काल में इस तरह की पाठशालाओं को खोलना और चलना लगभग असंभव कार्य था।'[3] सावित्रीबाई फुले के साहित्य में प्रमुखता से काव्य लेखन शामिल है जिसमें सामाजिक प्रबोधन की दृष्टि से लिखी गयी रचनाओं के साथ प्रार्थना, स्वतंत्रता और प्रकृति को केंद्र में रखकर कविताएं साकार हुई हैं। दलित शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सावित्रीबाई फुले की रचनाओं में प्राप्त होता है। सन् 1854 में प्रकाशित 'काव्यफुले' कविता संग्रह के 'सावित्री व जोतिबा संवाद' के अध्याय में प्रश्न–उत्तर के स्वरूप 'दीनदलित' शब्द आया है। इस काव्य का स्वरूप संवाद में होते हुए मराठी 'अभंग' की शैली में रचा गया है।

सावित्रीःवाछिती रजनी।

सृष्टी काळोखात॥

राहो अंधारात। सर्व काळ ॥७॥

घुबडाची इच्छा। अशीच असते॥

देतसे सूर्यास। शाप शिव्या ॥८॥

विखारी रजनी। काळरात्र गेली ॥

सृष्टी प्रकाशली। सूर्य तेजे ॥६॥

'जोतिबा :खरे तुझे बोल। हटला अंधार॥

शूद्रादि महार। जागे झाले ॥१०॥

दीनदलितांनी। सहावे ॥

अमानुष व्हावे। घुबड़ेच्छा ॥११॥[4]

उपरोक्त काव्य पंक्तियों का हिंदी में आशय इस प्रकार है– सावित्री कहती है कि 'ये रजनी तो चाहती है की ये सृष्टि सदा सर्वकाल अंधकार में रहे। और ऐसी ही मंशा इस उल्लू की भी है जो सूर्य को कोसता हुआ गलियाँ देता है। ये विष समान रजनी और काली रात्र चली गई। और सूर्य के तेज से सृष्टि फिर प्रकाशमान हो उठी है। जोतीराव का उत्तर 'सावित्री तेरी बात बिलकुल खरी है। अब अंधकार दूर हुआ और ये शूद्रादि महार जागृत हुए। दीनदलित केवल सहते रहे और अमानुष बन जावे। इस उल्लू की मंशा यही है'। इस काव्य संवाद में सावित्रीबाई फुले ने अपने संग्रह 'काव्यफुले' में किस प्रकार 'दीनदलित' शब्द का प्रयोग किया है यह स्पष्ट देखा जा सकता है। जोतीराव फुले से विवाह के उपरांत सावित्रीबाई फुले की प्रारंभिक शिक्षा–दीक्षा जोतीराव के परिवार में ही आरंभ हुई। तत्कालीन समय में जोतीराव का युवा मन जब अपनी

सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त उंचनीच–भेदभाव के वातावरण में उद्वेलित हो रहा था उसी समय सावित्रीबाई अपने परिवार में जोतीराव के वैचारिक उद्वेलन से निरंतर प्रभावित हो रही थी। सन् 1854 में प्रकाशित 'काव्यफुले' संग्रह की मूल प्रति के विषय में बताते हुए सावित्रीबाई फुले की कविताओं के अनुसंधानकर्ता मा. गो. माली लिखते है कि "शीलाप्रेस पर छपी इस पुस्तक के मुखपृष्ठ पर शंकरपार्वती का चित्र है। मिशनरी छापखाने से यह छपी हुई है ऐसा दर्ज है।"[5] आधुनिक शिक्षा के प्रति जागरूकता का बोध सावित्रीबाई फुले की कविताओं में प्रार्थनाओंके रूप में भी प्राप्त होता है। इन प्रार्थनापरक कविताओं का मूल उद्देश्य भी स्त्रीशूद्रातिशूद्रों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करना हैं। अनार्यों के शीर्षस्थ देवता शिव की प्रार्थना में सावित्रीबाई फुले लिखती है–

"सत्य सुंदर शिव थाट। शिरी शोभे जटाजपळत॥

वाहती गंगाधरा उत्कट॥ चतुर्दश विद्येच्या"॥[6]

जोतीराव फुले के समग्र चिंतन में आर्य और अनार्य का एक स्पष्ट दृष्टिकोण विकसित हुआ था जिसका प्रभाव सावित्रीबाई फुले की कविताओं में भी दिखता है। जिस कारण वे शिव को स्त्रीशूद्रातिशूद्रों के अज्ञान को नष्ट करनेवाले अनार्यों के देवता के रूप में प्रार्थना करती है और उस सत्य सुंदर शिव के वैभव की जटाओं से बहती हुई उत्कट ज्ञान गंगा को चतुर्दश विद्या के प्रतीक के रूप में देखती है। जोतीराव फुले और सावित्रीबाई फुले के दांपत्य जीवन का वैचारिक संवाद मूलतः सामाजिक प्रबोधन की आधुनिक परंपरा का भारतीय स्वर है जिसमें विवाहित स्त्री–पुरुष जीवन की वास्तविक समता–समानता ज्ञात होती है। इन दोनों का वैचारिक परिवेश और जीवन को समझने का दृष्टिकोण भी अत्यंत उच्चकोटी का है। जोतीराव जैसे जीवनसाथी के प्रति अपने समर्पित जीवन के दर्शन को प्रकट करते हुए सावित्रीबाई लिखती है–

"जयाचे मुळे मी कविता रचीते।

जयाते कृपे ब्रह्म आनंद चित्ते।

जयाने दिली बुद्धी ही सावित्रीला।

प्रणामा करी मी यती जोतिबाला"॥[7]

सावित्रीबाई फुले के उपरोक्त काव्य का आशय है कि 'जिनके (जोतीराव) कारण मैं कविताएं लिखती हूँ। जिनकी कृपा से चित्त में ब्रह्मानन्द है। जिसने दी है बुद्धि इस सावित्री को। प्रमाण करती हूँ मैं अपने मार्गदर्शक जोतिबा को'। सावित्रीबाई फुले के काव्य संग्रह के बाद के वर्ष यानी सन् 1855 में जोतीराव फुले का नाटक 'तृतीय रत्न' प्रकाशित होता है। जोतीराव फुले इस नाटक का प्रारंभ करते है – माली–कुर्मी स्त्री के गर्भावस्था के क्षण–प्रसंग के उल्लेख से। "प्रथमतः माली–कुर्मी का शिशु जब अपनी माँ के गर्भ में पलने लगता है तभी गाँव का ब्राह्मण जोशी यानी पुरोहित इस गरीब स्त्री को बड़ी–बड़ी झूठमूठ की बातें बताकर इस गरीब महिला के धन को कैसे लूटता है। इस विषय में मैं यहाँ पर लिखूँगा।"[8] 'तृतीय रत्न' नाटक का मूल उद्देश्य है स्त्रीशूद्रातिशूद्रों में व्याप्त अज्ञान और आडंबर से उनकी अपनी सर्वथा मुक्ति। किंतु यह मुक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? यह संवाद का विषय फुले दंपति की साहित्यिक रचना कर्म के मूल में है। मुरलीधर जगताप लिखते है कि "जोतीराव सावित्रीबाई के आदर्श पति, अंतरंग मित्र, और पूजनीय गुरु थे। सावित्रीबाई के मन पर जोतिबा की सादगी, सदाचार और कार्यशीलता का गहरा प्रभाव हुआ था। इसी से वे जोतीराव के जीवन में संपूर्णतः घुल–मिल गई थी, उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गई थी और अपने पति का ऋण स्वीकार करते हुए उनकी एक कविता –

वे है अज्ञानी जनों के कर्णधार

देते है उन्हें नित सद् विचार

वे है कृतिवीर तथा ज्ञानयोगी

झेलते है दुख स्त्रियों–शूद्रों की खातिर।[9]

महात्मा जोतीराव फुले और सावित्रीबाई फुले के दांपत्य जीवन का उद्देश्य स्त्री–शूद्रों और अतिशूद्रों के जीवन में आमूल परिवर्तन लाना था जिसका माध्यम उन्होंने शिक्षा को बनाया था। स्वयं शिक्षित बनने और फिर शिक्षा से वंचित इस अंतिम पायदान के लोगों को शिक्षा प्रदान करने के फुले दंपति के प्रयासों में साहित्यिक अवदान में जोतीराव फुले की प्रारंभिक नाट्य कृति 'तृतीय रत्न' पर डॉ. सदानंद मोरे लिखते है कि "तृतीय रत्न (1855) पर नाटक पर ईसाई धर्म तथा मिशनरियों का प्रभाव थोड़ा अधिक पाया जाता है। बाद की अवधि में 'परमहंस' के साथ स्थापित संबंधों के कारण अगली कृति में यह प्रभाव कम रह गया होगा"।[10] तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य में यह स्पष्ट था कि भारत में पैर जमाते अंग्रेजी राज और एक के बाद एक स्थापित होती हुई ईसाई मिशनरी गतिविधियों के बीच महात्मा फुले का मुख्य लक्ष्य 'स्त्रीशूद्रातिशूद्रों' को आधुनिक शिक्षा के केंद्र में लाना था।

जिसका माध्यम तत्कालीन पैर जमाती हुई ब्रिटिश व्यवस्था ही थी जिस कारण महात्मा जोतीराव फुले को अपने समकालीनों की कटु आलोचना को भी सुनना पड़ा। बावजूद इसके फुले दंपति ने इस प्रतिकूल समय में स्त्रीशूद्रातिशूद्रों में शिक्षा के प्रसार का सबसे प्रभावी माध्यम अपनी साहित्यिक विधाओं को बनाया। 'तृतीय रत्न' नाटक का समाहार ही वास्तविक स्त्री–पुरुष समता की शिक्षा से होता है जिसमें नाटक का पात्र पति अपनी पत्नी से कहता है– 'उन दोनों ने हमें अपनी पाठशाला में आने का कितना आग्रह किया लेकिन आज तक हमनें उनकी रात्री की पाठशाला में ना जाकर अपना ही नुकसान किया है तब चलों रात्री भोजन के बाद हम दोनों फुले की पाठशाला में पढ़ने चलते हैं'। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सावित्रीबाई फुले का काव्य संग्रह 'काव्यफुले' और महात्मा फुले का नाटक 'तृतीय रत्न' सामाजिक परिवर्तन की दिशा में की गई साहित्यिक गतिविधि तो थी ही किंतु एक आदर्श वैचारिक दांपत्य जीवन का संवाद भी था।

संदर्भ

1. जगताप, मुरलीधर, (1993). युगपुरुष, महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिति, उच्च एवं तंत्र शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र शासन, मुंबई, पृ.सं. 111
2. पावडे, सतीश. (2007). महात्मा ज्योतिराव फुले कृत तृतीय रत्न आद्य मराठी नाटक, नभ प्रकाशक, अमरावती, पृष्ठ संख्या–59
3. माळी, मा.गो. (1988). सावित्रीबाई फुले समग्र वाङमय, (ना.वि. जोशी : पुणे शहराचे वर्णन (संपा. गं. दे. खानोलकर, 1971, पृ. 87) प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई,
4. माळी, मा.गो. (1988). सावित्रीबाई फुले समग्र वाङमय, प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, पृ.सं. 33–34
5. माळी, मा.गो. (1988). सावित्रीबाई फुले समग्र वाङमय, प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, पृ.सं. 56
6. माळी, मा.गो. (1988). सावित्रीबाई फुले समग्र वाङमय, प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, पृ.सं. 04
7. माळी, मा.गो. (1988). सावित्रीबाई फुले समग्र वाङमय, प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, पृ.सं. 75
8. नरके, हरी. (2013), महात्मा फुले समग्र वाङमय, प्रकाशन–महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ, मुंबई, पृ.सं. 5

9. जगताप, मुरलीधर. (1993). युगपुरुष, महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती, उच्च एवं तंत्र शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र शासन, पृ.सं. 112

10. नरके, हरी. (1993) संपा. महात्मा फुले : साहित्य और विचार, महात्मा फुले चरित्र साधने प्रकाशन समिती, उच्च एवं तंत्र शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र शासन, मुंबई पृ.सं. 45